साहित्य परिक्रमा पत्रिका के हाल के अंक में:डॉ. धर्मवीर भारती के काव्य में आस्था और अनास्था का द्वंद्व

धर्मवीर भारती

डॉ. धर्मवीर भारती प्रयोगवादी और नई कविताओं की संक्रांतिकालीन बेला के साक्षी रहे हैं। तत्कालीन परिस्थितियाँ जहाँ एक ओर युद्ध जनित त्रासदियों की शिकार मानवता है, तो दूसरी ओर अंधकारमय वातावरण में भी जीवन के प्रति उत्कट भाव प्रवणता । इस संधिकालीन समय में कवि भारती के मन में दुविधा, संशय और भय के साथ-साथ आस्था का स्वर भी अंकुरित होता है। 'ठंडा लोहा', 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'सात गीत वर्ष' जैसी कृतियाँ डॉ. भारती की एक दशक की ऐसी रचनाएँ हैं, जहाँ वे नवीन भाव और विचार बोध को जन्म तो देते हैं, परंतु संपूर्ण कृतित्व में आस्था और अनास्था का द्वंद्व निरंतर जारी रहता है ।

डॉ. भारती की आरंभिक रचनाओं में गहरी भावुकता, स्वप्निल उड़ान, प्रणय भावना के साथ सामाजिक संघर्ष के स्वर मिलते हैं । इन रचनाओं में किशोरावस्था का प्रणय, रूपासक्ति, आत्मसमर्पण की भावना और अहं का शमन कर जीवन की व्यापक सच्चाई को ग्रहण किया गया है। डॉ. धर्मवीर भारती के शब्द हैं- "किशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति, और आकुल निराशा से एक आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहं का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भाव-भूमि की खोज, मेरी इस छंद-यात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं।"1

डॉ. रामदरश मिश्र का विचार है कि असंगतियों को अनावृत्त करना ही सृजनधर्मिता है। वे लिखते हैं- "इन मान्य फारमूलों को, मूल्य की विघातक विसंगतियों को अनावृत्त करना सर्जनात्मकता से असम्बद्ध नहीं है । कितनी बड़ी विडम्बना है कि उच्च संस्कृतियों और मूल्यों का ताज पहने हुए मानव ही मानव आत्मा के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता ।"2

वस्तुतः धर्मवारी भारती ने धर्म, दर्शन, समाज की शोषित करने वाली रूढ़ि, मृत परम्परा व सड़े-गले मूल्यों को चुनौती दी है, अशिव को जन्म देने वाली मान्यताओं के प्रति अनास्था बरती है, किंतु मानवतावादी पक्षों को ध्यान में रखकर आस्था व विश्वास को भी उसी निष्ठा से सृजित किया ।

डॉ. भारती अपनी प्रखर मेधा का परिचय देते हुए 'अंधायुग' में महाभारत के मिथकीय आवरण में समकालीन युद्धजनित समस्याओं का बखूबी चित्रण ही नहीं किया, बल्कि निजी अनुभूति को व्यापक सत्य के रूप में प्रकट किया । 'अंधायुग' कृति के रचनागत उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं- "......... इस कृति का पूरा जटिल वितान जब मेरे अंतर में उभरा तो मैं असमंजस में पड़ गया । थोड़ा डर भी लगा । लगा कि इस अभिशप्त भूमि पर एक कदम भी रक्खा कि फिर बचकर नहीं लौटूँगा ।"3 परन्तु रचनाकार अपने दायित्व से विमुक्त नहीं हो सकता, इसीलिए वे आगे लिखते हैं- "पर एक नशा होता है- अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गहराइयों में उतरते जाने का और फिर अपने को सारे खतरों में डालकर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ कणों को बटोर कर, बचाकर, धरातल तक ले आने का ।"4

कविवर डॉ. भारती प्राचीनता के अर्वाचीन शिल्पी माने जाते हैं । 'कनुप्रिया' में राधा के चरित्र को व्यापक व्यक्तित्व का रूप प्रदान कर युगीन संदर्भों में ढालकर प्रस्तुत किया है; जहाँ समस्याओं का समाधान है । दूसरी ओर 'सातगीत वर्ष' की कविताओं में आधुनिक जीवन का यथार्थ, जिसमें टूटन, घुटन,

निराशा, निरर्थकता, पराजय आदि भावों का स्वाभाविक चित्रण तो हुआ है, पर आशा, उत्साह, दृढ़ता व साहस के साथ सृजनधर्मी रहने का संदेश भी है ।कवि की मान्यता यह रही है- "साहित्य में शब्द तभी समर्थ, प्रेषणीय और प्राणवान बनते हैं, जब उनमें मानवीय मूल्य आन्तरिक रूप से प्रतिष्ठित रहता है ।"5

यही आस्था भाव कवि को सृजनात्मक धर्म की ओर प्रेरित तो करता है, पर अंतस् में निहित व्याकुलता द्वंद्व को जन्म देती है । जो कवि संक्रमणकालीन परिस्थितियों और विसंगतियों का द्रष्टा हो, वह अपने भावों को निश्चित रूप से इन्हीं शब्दों में प्रकट करेगा-

तुमने कब झेली संक्रांति / तुम क्या समझोगे ओ प्रभु !

इन गत्यवरोधों का दर्द / कैसे तरूणाई में ही /

घुट भर जाते हैं विश्वास / प्राणों की समिधाएँ

जमकर हो जाती हैं सर्द!"6

'कवि और अनजान पग ध्वनियाँ', 'थके हुए कलाकार से', 'कविता की मौत' आदि आरंभिक कविताओं में ही कवि का आस्था और अनास्था का द्वंद्व उभरता हुआ दिखाई देता है । एक ओर वे कहते हैं-

मेरी मोती-सी उपमाओं पर धूल जमी /

मेरी पलकों पर स्वप्न नहीं / मकड़ी का

भूरा जाला है .... (अनजान पगध्वनियाँ)

वहीं दूसरी ओर कविता को सृजन की आवाज बताते हुए वे कहते हैं-

भूख खूँरेज़ ग़रीबी हो मगर / आदमी के सृजन की ताकत

इन सबों की शक्ति के ऊपर / और कविता सृजन की आवाज़ हौ ।

(कविता की मौत)

कवि की इस मनः स्थिति पर टिप्पणी करते हुए **द्वारकाप्रसाद सांचीहर** लिखते हैं- "भारती के कवि से 'ध्वंस में पड़ मूर्च्छित जिंदगी' को बहुत आशाएँ हैं । कवि ने आस्था, सृजन, उत्थान व विश्वास के इतने सहानुभूतिपूर्ण गीत गाये कि अन्तर आलोकित कर देते हैं ।"7

वे मध्यमवर्गीय संघर्ष, आर्थिक झंझावातों में डूबा जीवन और वेतन-भत्तों के लिए इन्तज़ार मध्यमवर्गीय जीवन की सच्चाई है, यथा-

'यह कामकाज, दफ़्तर-फाइल, उचटा-सा जी

भत्ता-वेतन / ये सब सच है ।

(फूल, मोमबत्तियाँ, सपने)

'अंधायुग' में 'कृष्ण' का चरित्र जिस रूप में प्रकट हुआ है, उस बारे में कतिपय आलोचकों का मत है कि भारती जी ने भारतीय संस्कृति में कृष्ण के प्रति आस्था को कम कर दिया है, किंतु गहराई से दृष्टिपात करें तो यह प्रकट होता है कि कृष्ण की मृत्यु अश्वत्थामा के अनास्था भाव को समाप्त कर देती है । उक्त पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

सुनो मेरे शत्रु, कृष्ण सुनो

मरते समय क्या तुमने इस नर पशु अश्वत्थामा को

अपने ही चरणों पर धारण किया

अपने ही शोणित से मुझे अभिव्यक्त किया?"8

कवि की मानवतावादी चेतना भी क्रियात्मक एवं रचनात्मक शक्ति रखती है । कुंठा, आकुलता, हिंसा, विकृति, रक्तपात और बर्बरता में भी कृष्ण का यह आश्वासन सृजन का संदेश देता है, यथा-

मर्यादायुक्त आचरण में / नित नूतन सृजन में /

निर्भयता के / साहस के / ममता के / रस के /

क्षण में / जीवन और सक्रिय हो उठूंगा मैं बार-बार ।9

'सात गीत वर्ष' में संकलित 'प्रमथ्यु गाथा' का नायक अग्निवाहक, अकेला चलने वाला, कांतिकारी और हुतात्मा है, परंतु जनसाधारण भीरू, भाग्यवादी और शक्तिहीन है । उनके कल्याण के लिए प्रमथ्यु अपने प्राणों की बाजी लगा देता है, उसका यह कर्तृत्व आशावादी दृष्टि पर ही आधारित है, यथा-

उनमें से एक-एक के अन्दर /

मूर्च्छित प्रमथ्यु कहीं बन्दी है । /

अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का /

कोई तो ऐसा दिन होगा / जब मेरे ये पीड़ा-

सिक्त स्वर / उसके मन को वेध मुर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।10

'कौन चरण' नामक कविता में कवि उस आधार की तलाश कर रहा है, जहाँ वह अपने टूटे मन के तारों को जोड़ सके । आस्था भाव उसे अभी तक अप्राप्य है । उसको पाने की आकुलता भी स्पष्ट है । आरंभ में कवि 'ऐसे कोई भी नहीं चरण' कहकर निराशा व अनास्था से अपने मन को भर लेता है, किंतु अंत में वह फिर अपने लक्ष्य भ्रष्ट मन को आस्था भाव से भर लेता है और कहता है-

‘आखिर होंगे वे यही चरण

जिसमें इस लक्ष्य भ्रष्ट मन को

मिल पाएगी अन्त में शरण ।’11

महाभारत की कथा में वर्णित अभिमन्यु के रथ का ‘टूटा पहिया’ कवि की दृष्टि में टूटे हुए मन का प्रतीक बन गया है । आधुनिक संदर्भ में वह व्यक्ति जो अन्याय के सामने नतमस्तक है, शौर्यहीन है, उसके लिए यह टूटा व्यक्ति भी नवीन युग के निर्माण का आश्रय बन सकता है, इन संभावनाओं के मध्य कवि की आस्थावादी दृष्टि इस तरह प्रकट की है-

“मैं रथ का टूटा पहिया हूँ / लेकिन मुझे फेंको मत /

क्या जाने कब इस दुरूह चक्रव्यूह में / अक्षौहिणी

सेनाओं को चुनौती देता हुआ / कोई दुस्साहसी अभिमन्यु

आकर घिर जाये / बड़े-बड़े महारथी / अपने पक्ष

को असत्य जानते हुए भी / निहत्थी अकेली आवाज़

को / अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहें / तब

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया / उनके हाथों में ब्रह्मास्त्रों से

लोहा ल सकता हूँ ।”12

‘कनुप्रिया’ में राधा-कृष्ण का प्रेम शाश्वत नर-नारी का प्रेम बन गया है, जो काल की सीमा से परे है । पौराणिक होते हुए भी यह प्रणय-गाथा आधुनिक मन की दिव्यताओं और तन्मयताओं को अभिव्यक्ति देती है । कवि का निष्कर्ष यह है कि प्रेम की दुनिया को उजाड़ने वाला, अमानुषिक घटनाओं को जन्म देने वाला ‘युद्ध’ कभी भी मानव-जाति का भला नहीं कर सकता । कनुप्रिया अपने ‘कनु’ से प्रश्न करती है-

अपनी जमुना में / जहाँ घंटों अपने को निहारा करती थी मैं /

वहाँ अब शस्त्रों से लदी हुई / अगणित नौकाओं की पंक्ति

रोज-रोज कहाँ जाती है? / धारा में बह-बह कर

आते हुए, टूटे रथ / जर्जर पताकाएँ किसकी हैं? /

हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ / नभ को कँपाते हुए,

युद्ध घोष, क्रन्दन-स्वर / भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई ।

अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की / क्या ये सब

सार्थक हैं ?"13

'अंधायुग' में प्रभु अपने अवसान के क्षणों में जब ध्वंस का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं तो भविष्य की कल्पना भी रखते हैं । डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है- "आस्था का प्रश्न संजय, युयुत्सु और अश्वत्थामा के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत किया है और अनास्था को आस्था की भूमिका के रूप में स्वीकार किया है ।"14

विदुर का निवेदन इसी का प्रमाण है-

यह कटु निराशा की / उद्धत अनास्था है / क्षमा करो प्रभु। /

यह कटु अनास्था भी अपने / चरणों में स्वीकार करो । /

आस्था तुम लेते हो / लेगा अनास्था कौन ?"15

आस्था और अनास्था के द्वंद्व में भी कवि का समष्टि भाव ही अधिक मुखर रहा है । 'अंधायुग' में युयुत्सु का चरित्र आस्था के प्रति अनास्था भाव को प्रकट करने वाला है, वहीं कृष्ण की मृत्यु पर अश्वत्थामा का आस्थावान् बन जाना अपूर्व है । 'प्रमथ्यु गाथा' में प्रमथ्यु का आत्मबलिदान जनसाधारण को चेतनावान बनाने का संदेश देता हे, तो 'कनुप्रिया' युद्ध के ध्वंस का विरोध करती है । आम आदमी की पीड़ा, संत्रास, तिरस्कार और उपेक्षा के बीच कवि का स्वर लघु मानव की शक्ति को आस्थावादी दृष्टि से देखने का रहा है । कवि की उक्त पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"हम मनुष्य बौना है, लेकिन / मैं बौनों में बौना ही बनकर

रहता हूँ / हारो मत, साहस मत छोड़ो / इससे भी अथाह शून्य में /

बौनों ने ही तीन पगों में धरती नापी ।"16

समग्रतः डॉ. धर्मवीर के काव्य में युगीन विद्रुपताओं, वेदना व पीड़ा की गाथाओं, युद्ध जनित विषमताओं, मानवता को त्रास पहुँचाने वाली कई घटनाओं के चित्रण के बावजूद वे अपनी आस्था का स्वर कभी 'लघुमानव' में तलाश करते हैं, तो कभी अश्वत्थामा के हृदय परिवर्तन में । 'कनुप्रिया' के कांत सम्मित उपदेश में यही दृष्टि दिखाई देती है । इस संपूर्ण रचना-प्रक्रिया में आस्था और अनास्था के द्वंद्व में आस्थावादी दृष्टि का आकर्षण- पाठकों को सदैव आकर्षित करता है और भावी मूल्यों के निर्माण की प्रेरणा भी देता है ।

कविता की मौत.......... धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती ने दूसरे तार सप्तक में कविता की मौत शीर्षक से एक कविता लिखी थी जो आज के भारत के उदय होते

कवियों के प्रकाश में जबरन भारत का भूषण बनाने की कोशिशों के आलोक में पढी जानी चाहिए-

कविता की मौत

25-12-1926 - 4-9-1997

लादकर ये आज किसका शव चले?
और इस छतनार बरगद के तले,
किस अभागन का जनाजा है रुका
बैठ इसके पांयते, गर्दन झुका,
कौन कहता है कि कविता मर गयी?
मर गयी कविता,
नहीं तुमने सुना?
हाँ, वही कविता
कि जिसकी आग से
सूरज बना
धरती जमी
बरसात लहराई
और जिसकी गोद में बेहोश पुरवाई
पंखुरियों पर थमी?
वही कविता
विष्णुपद से जो निकल

और ब्रह्मा के कमंडल से उबल
बादलों की तहों को झकझोरती
चांदनी के रजत फूल बटोरती
शम्भु के कैलाश पर्वत को हिला
उतर आई आदमी की जमीं पर,
चल पड़ी फिर मुस्कुराती
शस्यश्यामलफूल, फल, फसल खिलाती,
स्वर्ग से पाताल तक
जो एक धारा बन बही
पर न आखिर एक दिन वह भी रही!
मर गई कविता वही
एक तुलसी-पत्र 'औ'
दो बूंद गंगाजल बिना,
मर गई कविता, नहीं तुमने सुना?
भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी,
उस अभागिन की अछूती मांग का सिंदूर
मर गया बनकर तपेदिक का मरीज
'औ' सितारों से कहीं मासूम संतानें,
मांगने को भीख हैं मजबूर,
या पटरियों के किनारे से उठा
बेचते है,

अधजले
कोयले.
(याद आती है मुझे
भागवत की वह बड़ी मशहूर बात
जबकि ब्रज की एक गोपी
बेचने को दही निकली,
औ' कन्हैया की रसीली याद में
बिसर कर सुध-बुध
बन गई थी खुद दही.
और ये मासूम बच्चे भी,
बेचने जो कोयले निकले
बन गए खुद कोयले
श्याम की माया)
और अब ये कोयले भी हैं अनाथ
क्योंकि उनका भी सहारा चल बसा!
भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी!
यूँ बड़ी ही नेक थी कविता
मगर धनहीन थी, कमजोर थी
और बेचारी गरीबिन मर गई!
मर गई कविता?
जवानी मर गई?

मर गया सूरज सितारे मर गए,
मर गए, सौन्दर्य सारे मर गए?
सृष्टि के प्रारंभ से चलती हुई
प्यार की हर सांस पर पलती हुई
आदमीयत की कहानी मर गयी?
झूठ है यह !
आदमी इतना नहीं कमजोर है !
पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नींव
ये परिस्थितियां बना देंगी उसे निर्जीव !
झूठ है यह !
फिर उठेगा वह
और सूरज की मिलेगी रोशनी
सितारों की जगमगाहट मिलेगी !
कफन में लिपटे हुए सौन्दर्य को
फिर किरन की नरम आहट मिलेगी !
फिर उठेगा वह,
और बिखरे हुए सारे स्वर समेट
पोंछ उनसे खून,
फिर बुनेगा नयी कविता का वितान
नए मनु के नए युग का जगमगाता गान !

भूख, खूँरेजी, गरीबी हो मगर
आदमी के सृजन की ताक़त
इन सबों की शक्ति के ऊपर
और कविता सृजन कीआवाज़ है.
फिर उभरकर कहेगी कविता
"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,
अभी मेरी आख़िरी आवाज़ बाक़ी है,
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा,
आदमीयत का अभी आगाज़ बाकी है !
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ,
नया इतिहास देती हूँ !
कौन कहता है कि कविता मर गयी?"

14. निराला के प्रति

वह है कारे कजरारे मेघों का स्वामी
ऐसा हुआ कि
युग की काली चट्टानों पर
पाँव जमा कर
वक्ष तान कर
शीश घुमा कर
उसने देखा
नीचे धरती का ज़र्रा-ज़र्रा प्यासा है,
कई पीढ़ियाँ
बूँद-बूँद को तरस-तरस दम तोड़ चुकी हैं,
जिनकी एक एक हड्डी के पीछे
सौ सौ काले अंधड़
भूखे कुत्तों से आपस में गुथे जा रहे।
प्यासे मर जाने वालों की
लाशों की ढेरी के नीचे कितने अनजाने
अनदेखे
सपने
जो न गीत बन पाये
घुट-घुट कर मिटते जाते हैं।
कोई अनजन्मी दुनिया है
जो इन लाशों की ढेरी को
उलट-पुलट कर
उभर उभर उभर आने को मचल रही है !
वह था कारे कजरारे मेघों का स्वामी
उसके माथे से कानों तक
प्रतिभा के मतवाले बादल लहराते थे
मेघों की वीणा का गायक
धीर गंभीर स्वरों में बोला-
'झूम-झूम मृदु गरज गरज घनघोर
राग अमर अम्बर में भर निज रोर।'

और उसी के होठों से
उड़ चलीं गीत की श्याम घटाएँ
पांखें खोले
जैसे श्यामल हंसों की पातें लहराएँ !

कई युगों के बाद
आज फिर कवि ने मेघों को
अपना संदेश दिया था
लेकिन किसी यक्ष विरही का
यह करुणा-संदेश नहीं था
युग बदला था
और आज नव मेघदूत को
युग-परिवर्तक कवि ने
विप्लव का गुरुतर आदेश दिया था !
बोला वह ...
"ओ विप्लव के बादल
घन-भेरी गर्जन से
सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, नवजीवन को
ऊंचा कर सिर ताक रहे हैं
ऐ विप्लव के बादल फिर-फिर !"
हर जलधारा
कल्याणी गंगा बन जाये
अमृत बन कर प्यासी धरती को जीवन दे
औ' लाशों का ढेर बहा कर
उस अनजन्मी दुनिया को ऊपर ले आये
जो अन्दर ही अन्दर
गहरे अँधियारे से जूझ रही है ।
और उड़ चले वे विप्लव के विषधर बादल
जिनके प्राणों में थी छिपी हुई
अमृत की गंगा ।
बीत गये दिन वर्ष मास ....

....

बहुत दिनों पर
एक बार फिर
सहसा उस मेघों के स्वामी ने यह देखा ...
वे विप्लव के काले बादल
एक एक कर बिन बरसे ही लौट रहे हैं
जैसे थक कर
सांध्य-विहग घर वापस आयें
वैसे ही वे मेघदूत अब भग्नदूत-से वापस आये !

चट्टानों पर
पाँव जमा कर वक्ष तान कर
उसने पूछा...
'झूम-झूम कर
गरज-गरज कर
बरस चुके तुम ?'
अपराधी मेघों ने नीचे नयन कर लिये
और काँप कर वे यह बोले ...
'विप्लव की प्रलयंकर धारा
कालकूट विष
सहन कर सके जो
धरती पर ऐसा मिला न कोई माथा !
विप्लव के प्राणों में छिपी हुई
अमृत की गंगा को
धारण कर लेने वाली
मिली न कोई ऐसी प्रतिभा
इसीलिए हम नभ के कोने-कोने में
अब तक मँडराए
लेकिन बेबस
फिर बिन बरसे
वापस आये।
ओ हम कारे कजरारे मेघों के स्वामी

तुम्हीं बता दो
कौन बने इस युग का शंकर !
जो कि गरल हँस कर पी जाये
और जटाएँ खोल
अमृत की गंगा को भी धारण कर ले!’

उठा निराला, उन काले मेघों का स्वामी
बोला.... ‘कोई बात नहीं है
बड़े बड़ों ने हार दिया है कन्धा यदि तो
मेरे ही इन कन्धों पर होगा
अपने युग का गंगावतरण !
मेरी ही इस प्रतिभा को हँसकर कालकूट भी पीना होगा।'

और नये युग का शिव बन कर
उसने अपना सीना तान जटाएँ खोलीं ।

एक एक कर वे काले ज़हरीले बादल
उतर गये उसके माथे पर
और नयन में छलक उठी अमृत की गंगा ।
और इस तरह पूर्ण हुआ यह नये ढंग का गंगावतरण ।

और आज वह कजरारे मेघों का स्वामी
जहर संभाले, अमृत छिपाये
इस व्याकुल प्यासी धरती पर
पागल जैसा डोल रहा है,
आने वाले स्वर्णयुगों को
अमृतकणों से सींचेगा वह
हर विद्रोही कदम
नयी दुनिया की पगडंडी पर लिख देगा,
हर अलबेला गीत
मुखर स्वर बन जायेगा
उस भविष्य का
जो कि अँधेरे की परतों में अभी मूक है ।

लेकिन युग ने उसको अभी नहीं समझा है
वह अवधूतों-जैसा फिरता पागल-नंगा
प्राणों में तूफ़ान , पलक में अमृत-गंगा ।
प्रतिभा में
सुकुमार सजल
घनश्याम घटाएँ
जिनके मेघों का गंभीर अर्थमय गर्जन
है कभी फूट पड़ता अस्फुट वाणी में
जिसको समझ नहीं पाते हम
तो कह देते हैं
यह है केवल पागलपन
कहते हैं
चैतन्य महाप्रभु में, सरमद में
ईसा में भी
कुछ ऐसा ही पागलपन था
उलट दिया था
जिसने अपने युग का तख़्ता ।

15. थके हुए कलाकार से

सृजन की थकन भूल जा देवता!
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,

अभी तो पलक में नहीं खिल सकी
नवल कल्पना की मधुर चाँदनी
अभी अधखिली ज्योत्सना की कली
नहीं ज़िन्दगी की सुरभि में सनी

अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं

अभी स्वर्ग की नींव का भी पता!
सृजन की थकन भूल जा देवता!

रुका तू गया रुक जगत का सृजन
तिमिरमय नयन में डगर भूल कर

कहीं खो गई रोशनी की किरन
घने बादलों में कहीं सो गया
नयी सृष्टि का सप्तरंगी सपन
रुका तू गया रुक जगत का सृजन

अधूरे सृजन से निराशा भला
किसलिए जब अधूरी स्वयं पूर्णता
सृजन की थकन भूल जा देवता!

प्रलय से निराशा तुझे हो गई
सिसकती हुई साँस की जालियों में
सबल प्राण की अर्चना खो गई

थके बाहुओं में अधूरी प्रलय
और अधूरी सृजन योजना खो गई

प्रलय से निराशा तुझे हो गई
इसी ध्वंस में मूर्च्छिता हो कहीं
पड़ी हो, नयी ज़िन्दगी; क्या पता?
सृजन की थकन भूल जा देवता